संपादकीय

शीलबोधि
कार्यकारी संपादक
9971566918

बेगमपुरा
कहानी दर्शन को सोच में बदलती है

कहानी अपने-आप में एक पूर्ण विधा है। ''कहानी समय में दखल कम करती है बल्कि समय का बयान ज्यादा करती है'–इस बात से आसानी से असहमत हुआ जा सकता है, कहानी का जन्म ही सहमति या असहमति के किसी बिंदु से होता है। कहानी अपने-आप में एक दृष्टि है, जो हो सकता है किसी की दृष्टि में न आया हो, वह कथाकार की दृष्टि में आ गया हो, जैसा किसी ने न समझा हो, वैसा कथाकार ने समझ लिया हो, जैसा किसी ने महसूस न किया हो, कथाकार ने महसूस किया हो। जो भी हो, कथाकार को जो मिलता है, वह उसे अपनी जेब में संभालकर रखने की बजाय बांटना चाहता है। जो है, जैसा है, वह सब कुछ जिसे कथाकार ने हासिल किया है, वह चाहता है कि उसमें सभी का हिस्सा बने। सब जाने, सब समझें और सभी महसूस करें।

जब हमने यह स्वीकार कर लिया है कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, तब हमें यह स्वीकार करने में ज्यादा आपत्ति नहीं होगी कि मनुष्य के सामाजिक प्राणी होने की शर्त उसका समाज के रूप में रहना-सहना है। यह भी हम सभी जानते हैं कि समाज एक व्यवस्था है। कोई व्यवस्था कुछ नियमों पर टिकी होती है। समाज के लिए नियम आधारित व्यवस्था के साथ दंड की व्यवस्था भी होती है। दंड का भय समाज में शामिल किसी भी व्यक्ति को सामाजिक नियमों को तोड़ने से विरत रखता है। ये नियम पारिवारिक नैतिकता व सामाजिक नैतिकता के रूप में टिके हुए होते हैं। नैतिकता के नियम उस 'मन' को संचालित कर रहे होते हैं, जो मन पूरे 'तन' को संचालित कर रहा होता है। जिस 'मन' की हम बात कर रहे हैं, वह पाँच ज्ञानेंद्रियों से प्राप्त 'प्राकृतिक मन' से अलग है। प्राकृतिक मन का काम; देखना, सुनना, चखना, सूंघना और त्वचा से महसूस करना ही है।

जान लेने के भाव अथवा जान लेने की प्रक्रिया को विज्ञान कहा जाता है। मनुष्य के शरीर में पाँच तरह के विज्ञान सक्रिय रहते हैं, जैसे अभी बताया है कि देखना, सुनना, चखना, सुंघना और महसूस करना। ये पाँच तरह के विज्ञान हैं, जो उन असंख्य तत्त्वों की परस्पर आनुपातिक क्रिया है, जो जल-तत्त्व, ताप-तत्त्व, पृथ्वी-तत्त्व व वायु-तत्त्व के मेल-मिलाप से संभव होती है। इसी

भूमिका और क्रियाशीलता से छठा विज्ञान उत्पन्न होता है जिसे 'प्राकृतिक मन' कहते हैं। जिस शरीर में चार महाभूत यानी चार वर्गीकरण में समझे गये तत्त्वों की आनुपातिक मात्रा नहीं होती है, उस शरीर में जागृत प्राकृतिक मन नहीं होता, वहाँ देह की क्रिया नहीं होती है बल्कि देहांत की क्रिया होती है।

प्राकृतिक-मन से अलग एक 'संस्थापित-मन' (installed mind) होता है, वैदिक संदर्भ में उसे 'संस्कारित-मन' कहा जा सकता हैं। केवल समझने भर के लिए उदाहरण दे रहा हूँ, जैसे कंप्यूटर में विंडो नाम का सॉफ्टवेयर होता है, वैसा मनुष्य का 'प्राकृतिक मन' होता है, जो शरीर द्वारा ग्रहण करने की क्रिया का आधार है। इस आधार-मन पर जिस मन को संस्थापित किया जाता है, उसे संस्थापित-मन कहते हैं। जो हम अपने अनुभवों से सीखते हैं और जो हमें सिखाया जाता है, उस सबको मिलाकर जो बनता है, वही 'संस्थापित-मन' कहा जाता है। संस्थापित-मन को 'संस्थापित- मन', इसलिए कहा जाता है, क्योंकि इसे 'आधार-मन' पर संस्थापित किया जाता है।

सुबह उठने से लेकर शाम को सोने तक की हमारी क्रियाएं दो भागों में विभाजित हैं, पहले भाग में प्राकृतिक क्रियाएं जैसे सोना, खाना, पीना, हँसना-रोना, महसूस करना, हगना-मूतना, साँस लेना आदि, दूसरे भाग में वे सभी क्रियाएं शामिल होती हैं, जो प्राकृतिक क्रियाएं नहीं हैं, जिन्हें हम *'पारिवारिक नैतिकता व रीति-रिवाज-परंपराएं'* तथा *'सामाजिक नैतिकता और रीति-रिवाज-परंपराएं'* कहते हैं, वही संस्थापित मन होता है। इस दूसरे भाग में पद होते हैं, पद की प्रतिष्ठा होती है और पद के दायित्व होते हैं। दायित्व के साथ अधिकार की भी व्यवस्था होती है। पद, प्रतिष्ठा, दायित्व व अधिकार को मिलाकर एक अनुशासन बनता है। इसी अनुशासन को शरीर के आधार यानी 'प्राकृतिक मन' पर संस्थापित किया जाता है, जैसे कंप्यूटर की विंडो पर एमएस-ऑफीस, पेजमेकर, कॉरल ड्रा जैसे प्रोग्राम इंस्टाल किये जाते हैं। मनुष्य के दैनिक जीवन पर सबसे ज्यादा अधिकारिक कब्जा संस्थापित मन का होता है।

जो साकार है यानी तन और जो निराकार है यानी मन, दर्शन दोनों की स्थिति को समझकर उसकी व्याख्या प्रस्तुत करता है। इसके बाद मनुष्य को सामाजिक प्राणी बनाने के लिए नैतिकता व रीति-रिवाज के रूप में अनुशासन देता है। कहानी और अन्य साहित्यिक विधाएं दर्शन को सामाजिक व्यवहार बनाने के लिए सोच बनाती है, या सोच में बदलाव करती है या एक सोच के स्थान पर दूसरी सोच को संस्थापित करती है। सोच में बदलाव का अर्थ होता है कि मन ने पूर्व स्वीकृत नैतिकता की मान्यताओं को अस्वीकृत किया है, या उन्हें संशोधित किया है, या पूर्ण रूप से प्रतिस्थापित किया है या नई मान्यताओं को स्वीकृत किया है। किसी बदलाव या नई चीज को मन ने अगर स्वीकृत कर लिया है, तब तन के द्वारा किये जाने वाले व्यवहार में उसी मात्रा में परिवर्तन आ जाएगा, जिस मात्रा में मन ने स्वीकार कर लिया है।

किसी स्थान पर जहाँ बदलाव की सोच के लोग कम होंगे, वहाँ बदला हुआ मन एक द्वंद्व से गुजर रहा होता है। कहानी में अक्सर ऐसा द्वंद्व दिखाई दे जाता है, यहाँ दी गई 22 कहानियों में भी वह द्वंद्व दिखाई दे रहा है, यही द्वंद्व असंख्य मन को बदलाव के लिए तैयार कर रहा होता है, आइए कहानियों पर गौर करते हैं।

1

डॉ. सुशीला टॉकभोरे की कहानी उस कुटिलता को सामने रखती है, जिसमें कुछ भी न कहकर सब कुछ कह दिया जाता है। सुपरवाइजर डॉ. दीपक सर की कार में लिफ्ट के बाद कथाकारा को निश्चित मान्यताएं सहानुभूति की चाश्नी में लपेटकर जहर बुझे संवाद के साथ वैसे ही परोसी जाती है जैसे कड़वी गोली को मीठी कोटिंग के साथ खाने के लिए दे दिया जाता है। पुरानी बातों या पेशों को याद कराना या उन पर बात करने का इरादा रखना, क्या जातभेद को नकारने के लिए किया जाता है, या फिर यह अहसास दिलाने के लिए किया जाता है कि बेशक आज तुम ऊंचे पद पर हो लेकिन हमारी नजर में तुम्हारा ओहदा वही है, जो हम उदारता के साथ जातिभेद को न मानते हुए तुम्हें अक्सर स्मरण करा रहे हैं।

2

विशेषांक की दूसरी कहानी 'नत्थो मेरी नहीं है' एक महिला के लिए तय उस दृष्टि व दर्शन की है, जिसमें उसके स्वतंत्र अस्तित्व को नकार देने के कारण उसकी इच्छा और निर्णयों की स्वाधीनता नहीं रहती है, कोई अधि कार नहीं रहते हैं। नत्थो अपनों के लिए स्नेहिल है, साथ ही वह समझदार भी है। उसकी समझदारी अक्षर ज्ञान की मोहताज नहीं है, फिर भी उनका स्कूल के लिए दिया गया दान भी शिक्षा के प्रति उसकी जागरूकता का परिचायक है। नत्थो का होना, न होना, कोई मायने नहीं रखता, लेकिन स्कूल को दिया अल्पदान ने उसे सदा के लिए अमर कर दिया। कहानी बताती है कि कैसे आवश्यकता से

अधिक धन अपने साथ बुराईयाँ लाता है और मानवीय संबंधों को पुनः परिभाषित करने लगता है।

3

इस कहानी में 'गुलमोहर' एक घर यानी आसियाना नहीं है, कोमल के संघर्ष और शख्सियत की देन है। वह लड़की जिसे एक हाथ की विकलांगता के कारण अपनों ने ही त्याग दिया था। इस कहानी में माँ का एक कथन है जो माँ से बड़ा बल बन जाता है। जिसके बलबूते कोमल, न केवल अपना सहारा खुद बनती है, बल्कि सैंकड़ों बेसहारों के लिए सहारा बनती है, प्रेरणा बनती है। भाई भी उस बहन से प्रभावित होता है, जो सफल है, आत्मनिर्भर है। कोमल को उसका भाई माता-पिता के जोड़े पैसे का चैक देता है, और वह उसे उस विद्यालय को दे देती है, जिसने उसमें वास्तविक बल दिया। कहानी बताती है, जीवन में हजारों निरर्थक वाक्यों में से कौन-सा वाक्य आपका आत्मबल बन जाए, पता नहीं चलता, लेकिन आत्मबल विद्या के बल पर इतना मजबूत हो जाता है कि निर्बल भी बलवान हो जाता है, तब सहारा लेता नहीं बल्कि देता है, यही इस कहानी की सार्थकता है।

4

'अभिशप्त जीवन' कहानी में पुष्पा विवेक ने किसी व्यक्ति या परिवार पर केंद्रित कहानी नहीं लिखी है, बल्कि सामाजिक जीवन की ऐसी कथा लिखी है, जिसे इसी देश में कुछ लोग जी रहे हैं। अशिक्षा के कारण वे अपने जीवन की विसंगतियों से निकलने का रास्ता नहीं निकाल पाते हैं। पूरी दम-भरकर की गई शारीरिक मेहनत के बावजूद बौद्धिक कुशलता के अभाव में दुर्गति से मुक्त नहीं हो पाते हैं।

कहानी में एक-ही माँ के दो बेटे हैं, एक कुंदनलाल जो शिक्षा प्राप्त कर सम्मानजनक रोजगार पा जाता है, दूसरा अशिक्षित चुन्नीलाल जो अपना मानसिक विकास न कर पाने के कारण नशे और गलत सोबत का शिकार हो जाता है। चुन्नी लाल की पत्नी विद्या अपनी सारी अच्छी खूबियों के बाद भी खूब मेहनत करने पर भी, अपने जीवन को खूबसूरत नहीं बना पाती। विद्या अपने बच्चों के लिए संघर्ष करते हुए खुद कुर्बान हो जाती है। कहानी अपना संदेश देती है कि गरीबी और भुखमरी से जुझकर जो शिक्षित हो गया, उसका जीवन सुधर गया, बाकी जो अशिक्षित रह गया, वह अपने जीवन को सुधार नहीं पाता है। ऐसा आदमी अगर दुर्व्यसनों में पड़ गया तो अपने साथ परिवार के जीवन को भी बद से बदतर बना देता है। अपना संदेश देने में कहानी सफल रही है।

5

डॉ. सुभा टी आर की कहानी 'उजाले की ओर' में कमली को एक अंधविश्वास के कारण देवदासी बनना पड़ा। कहानी में कथा लेखिका देव के स्थान पर देवी येलम्मा से विवाह का जिक्र करती है। देखा जाए तो यह विवाह समान लिंग के व्यक्तियों के बीच होने के कारण लेसबियन जैसा लगता है। विवाह की मान्यता यहाँ वैसी लागू नहीं होती जैसा विवाह माना जाता है। गाँव-देहात में जो वर्ग समाज को संचालित और नियंत्रित करता है, समाज की दृष्टि व देखने के तरीके यानी दर्शन को भी नियंत्रित करता है। यह व्यवस्था गलत है, क्योंकि इसके पीछे की दृष्टि यानी एक महिला का विवाह एक देवी के साथ करवा देना, ही गलत है, यह तब भी गलत ही होता जब एक महिला का विवाह उस देव के साथ करा दिया जाता जिसका प्राकृतिक अस्तित्व पत्थर का है। इस अप्राकृतिक व्यवस्था का लाभ किसे मिलता है, उस प्रभुत्वशाली सामाजिक वर्ग को जिसे द्विज या ऊंची जाति कहा जाता है। इसमें हानि किसकी होती है, शोषण किसका होता है, इस व्यवस्था में तबाह कौन होता है, वह सामाजिक वर्ग जिसकी अपनी कोई दृष्टि या दर्शन नहीं होता है यानी नीचे स्तर की जाति। कमली को इसी मिथ्या और गलत दर्शन के कारण देव दासी बना दिया जाता है, उसके शरीर का उपभोग शिव शंकर करता है, इस वजह से पवित्रा का जन्म होता है, जैविक आधार पर शिव शंकर पवित्रा का पिता होता है, लेकिन मिथ्या दर्शन पर खड़ी सामाजिक व धार्मिक व्यवस्था में शिव शंकर पवित्रा का पिता नहीं है। खुद शिव शंकर की मिथ्या दृष्टि में पवित्रा उनकी बेटी होने के बावजूद भी बेटी नहीं, वह पवित्रा का उसी तरह से दैहिक शोषण करना चाहता है, जैसे कमली का किया था। कमली शिव शंकर को पवित्रा के पिता के रूप में देखती है, पर शिव शंकर पवित्रा को बेटी के रूप में नहीं देखता है, उस देवदासी की बेटी को देवदासी के रूप में ही देखता है। देखने का यह दर्शन ही मनुष्य के व्यवहार का नियमन करता है। नियमन करने वाला वर्ग प्रभुत्वशाली होता है, भारत में उच्च जाति वह प्रभुत्वशाली वर्ग है, जो दृष्टि व दर्शन देता है, वही सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक व्यवस्था करता है। कहानियाँ दर्शन को व्यवहार में लाने की सोच निर्मित करती है। ब्राह्मणवादियों ने ब्राह्मण दर्शन को, सामाजिक व्यवहार बनाने के लिए, सोच को, ढेरो कहानियों के सहारे बदला है।

6

'तीसरी कसम' कहानी में 'राधे' एक पुरुष पात्र है, जो एक ऐसे समाज का हिस्सा है, जहाँ महिलाएं नाचने-गाने का काम करती हैं। समाज में ये लोग-लुगाइंयाँ अपने पेशे के कारण निम्नतर समझे जाते हैं। समाज के प्रभुत्वशाली वर्ग का नजरिया (दर्शन) बेशक इन्हें सम्मान नहीं देता है, लेकिन अपनी स्वयं की नजर में ये कलाकार हैं। इनके लिए यह समझना मुश्किल है कि बड़े मंचों से गाने-बजाने वाले कलाकारों और इनमें क्या अंतर है। वे बड़े मंचों के कलाकारों-सा सम्मान क्यों नहीं पाते हैं। कला व कलाकार को सम्मान मिलने की बात इनके लिए बहुत दूर की कौड़ी साबित होती रही है, जबकि कला प्रस्तुति इनके दैहिक शोषण का कारण बन जाती है। इनके पास जीवन व सम्मान की कोई सुरक्षा नहीं है। राधे अपनी पहली कसम खाता है कि वह अपनी बहन चंपा जीजी को नाचने नहीं देगा, लेकिन वह कुछ नहीं कर पाता है। जब उसकी दो बेटी होती हैं, तो अपनी बेटी की शादी कर देता है, शादी के बाद उसकी बड़ी बेटी सोना भी नाचने-गाने का काम करने लगती है। इसका राधे दुख मनाता है। राधे दूसरी बार कसम खाता है कि उसकी छोटी बेटी रमैनी नाचने-गाने का काम नहीं करेगी। वह पढ़ेगी और बहनजी (मैडम) बनेगी।

रमैनी पढ़ना चाहती है लेकिन अध्यापकों का रूखा व्यवहार और चिढ़ा देने वाली टिप्पणियों से तंग आकर वह अपनी पढ़ाई छोड़ देती है। इस तरह राधे की दूसरी कसम भी पूरी नहीं होती है।

राधे की छोटी बेटी रमैनी बड़ी हो जाती है, उसकी बेटी का नाम मीनू है। रमैनी की भांति एक दिन मीनू भी स्कूल से आकर कहती है कि वह नहीं पढ़ेगी, उसे हमेशा कक्षा में पीछे बैठाया जाता है। मास्टरजी हमें गंदा कहते है। रमैनी अपने पिता की दो अपूर्ण कसमों के बाद तीसरी कसम खाती है कि चाहे कुछ भी हो, वह अपनी बेटी को जरूर पढ़ाएगी, वह उसका हाथ पकड़कर स्कूल की ओर चली जाती है। रमैनी के अंदर और बाहर कुछ ऐसा नहीं जिसे निजी कहा जाए और न ही ऐसा है कि सामाजिक कहा जाए। आगे बढ़ने के लिए जिन रास्तों का खुले रहना जरूरी है, उन्हें रमैनी आँख से नहीं अक्ल से देखती है, वह न दिखाई देने वाले ब्राह्मणवादी दर्शन से टकराने के लिए चल देती है। रमैनी इस काबिल नहीं है कि वह ब्राह्मणवाद से इतर अपने लिए बेहद दर्शन का विकल्प तलाश सके, लेकिन मीनू से उम्मीद की जा सकती है, वह पढ़-लिखकर अपने लिए दर्शन का विकल्प तलाश कर लेगी।

7

शहरीकरण के साथ जाति आधा-रित मोहल्लों की हदबंदी भी टूटी है। एक से ज्यादा जातियों के लोग अपनी आर्थिक क्षमताओं के अनुसार नई बस्तियों में बसते जा रहे हैं। ऐसे में सामाजिक संबंधों और मेल-जोल की वैसी शुरुआत हो रही है, जो पहले नहीं हुई थी, जाति का भाव एक किनारे होता जा रहा है और एक नया समाज बनता जा रहा है, जो पहले जैसे दायरों को कुछ हद तक तोड़ चुका है, यहाँ इंसान एक-दूसरे से मिल-जुल रहा है और एक-दूसरे की खुशियों में शामिल हो रहा है, लेकिन 'दाल में काला' कहावत के चारित्रार्थ भी कुछ लोगों के व्यवहार में भेदभाव दिखाई दे जाता है। इस नये तरह के समाज में शर्माइन का नजरिया अभी नहीं बदला है, क्योंकि वह उस दृष्टि को अपनाएं हुए है, जिसमें शर्माइन उच्च है और मालती नीच है, बेशक शिक्षा, धन, पद में वह समान है। समाज के बदलते स्वरूप में यह कुरूपता भी दिखाई दे जाती है, जहाँ यह अहसास करा ही दिया जाता है कि सामान्य सामाजिक संबंध में कुछ भी सामान्य नहीं हुआ है।

शर्माइन का वह नजरिया और नजरिये के पीछे खड़ी मान्यताएं अभी भी समाज की एकता में अवरोधक बन कर खड़ी है। मालती ऐसी दृष्टि को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं है जिसमें शर्माइन उच्च हो और वह निम्न हो जाती हो। वह शर्माइन के साथ अगर कोई संबंध रख सकती है तो केवल बराबरी का, ऊंच या नीच का नहीं। मालती अब इस स्थिति में है कि वह उस सहयोग से आगे इंकार कर सकती है, जो अभी तक करती आ रही है। पड़ोस की दूसरी औरत के समान जब मालती को समान रूप से सम्मान नहीं मिलता तो वह सख्त लहजे में समझा आती है कि उसके घर के बाहर लगा शादी का कूड़ा जल्द उठा लें, नहीं तो वह पुलिस को शिकायत भी कर देगी। शर्माइन का झेपता चेहरा नये और पुराने नजरिये की न्याय संगतता का सामाजिक द्वंद्व बन जाता है। सुमित्रा मेहरोल की कहानी बाखूबी इसे रेखाकिंत करने में सफल रही है।

8

समाज की मान्यताएं जिनसे समाज का व्यवहार तय होता है, हुआ है, स्त्री के प्रति न्यायपूर्ण नहीं है। जिन्होंने इन मान्यताओं को गढ़ा होगा, वे भी न्यायप्रिय नहीं होंगे। लेखिका न्यायप्रिय है, इसलिए उसकी मान्यता है कि यौन-अपराध

होने पर अपराधी को चिह्नित किया जाए और यौन अपराध करने पर पुरुष अपराधी को बचाया न जाए बल्कि सजा दिलाई जाए। समाज में ऐसा होता नहीं है। यौनिक-अपराध की कहानियाँ कागज पर पेंसिल लिखकर रबड़ के मानिंद मिटा दी जाती है, लेकिन यह कोई नहीं देखता है कि मिटा देने के बाद भी कागज पर रह गए पेंसिल की लिखाई के निशान कोई रबड़ नहीं मिटा पाती, वे बने रह जाते हैं, उनकी ओर देखा नहीं जाता, उसकी उपेक्षा कर दी जाती है। भुला दिये गए यौन-अपराध के गहरे दर्द भरे निशान टिसने के लिए जहाँ रह जाते हैं, बस रह जाते हैं। लेखिका पूनम तुषामड अपनी कहानी में न्याय माँगती है, अपने लिए नहीं, एक मासूम बच्ची के लिए, पर कुछ असमान सामाजिक मान्यता से निर्मित मिथ्या दर्शन रास्ते बंद करता जाता है। लेखिका की 'कसक' जरूर पाठक के मन में कसमसाहट पैदा करेगी, पाठकों की मान्यताओं को बदलेंगी, यहीं से सामाजिक बदलाव की शुरुआत होगी।

9

डॉ. राजकुमारी ने अपनी कहानी 'फिर यहीं आयेंगे वे' में उजागर किया है कि कैसे पहचान बिगड़ने के साथ समाज बिगड़ता है। समाज में परस्पर संबंध बिगड़ते हैं, और वे रास्ते भी बिगड़ जाते हैं, जो उन्नति की ओर ले जाते हैं। लेखिका जो पढ़ना चाहती है, उसे गाँव में घटित एक घटना के कारण पढ़ने से रोका जाता है। घटना है कि एक चूहड़े का लड़का और चमार की लड़की गाँव से बाहर पढ़ने के लिए जाते हैं, और आपस में शादी कर लेते हैं। गाँव में इस बात पर पंचायत होती है। पंचायत में शामिल लोग इस बात को भूल चुके हैं कि वे मनुष्य हैं, उनके अंदर केवल यही अहसास जिंदा है कि वे चूहड़े या चमार हैं। जब अनपढ़ थे तो जो किसी ने बताया वह मान लिया। इसलिए मनुष्य के रूप में अपना सही व सम्यक दर्शन करने की बजाय पंचायत में बैठे लोग मनुष्य को मिथ्या दर्शन से चूहड़े व चमार के रूप में पहचान रहे हैं। जिन समाज के नेताओं का इंतजार पंचायत कर रही है, वे भी मिथ्या दर्शन से पीड़ित है। ज्ञान से नहीं अज्ञान से बनी सामाजिक मान्यताओं को मान्यता देते हैं। हालांकि ये समाज के नेता मंचों से खड़े होकर बाबा साहेब आंबेडकर का नाम लेकर समाज को एक होने का संदेश देते हैं। जातिभेद की दीवारों को गिराने की बात करते हैं। मंचों से बोलते हुए उन्हें यह अहसास नहीं होता है कि वे क्या बोल रहे हैं, उन्होंने कहीं सुना था, उसे ही मंचों पर चढ़कर दोहरा देते हैं। यहाँ पंचायत में आकर भी वे क्या फैसला दे रहे हैं, यह उनके विवेक से उत्पन्न सम्यक दर्शन नहीं है, यह भी उन्होंने कहीं सुना है, उसी को यहाँ दोहरा रहे हैं–'लड़का चूहड़े का है और लड़की चमार की है, दोनों की जाति एक नहीं है, इसलिए यह शादी नहीं हो सकती। दोनों को समाज से बाहर किया जाता है।' इतनी अज्ञानता और इतनी अविद्या से जिस सामाजिक क्लेश को खत्म करने की बात की जा रही है, वह सामाजिक क्लेश खत्म कहाँ हो रहा है, बल्कि मजबूत हो रहा है। नतीजा यह है कि गाँव की वे लड़कियाँ जो गाँव से बाहर जाकर आगे की शिक्षा लेना चाहती हैं, उन्हें आगे शिक्षा लेने से प्रतिबंधित कर दिया जाता है।

समाज के नेता और डॉ. आंबेडकर का नाम लेकर मंचों पर चढ़कर चिल्लाने वाले नेताओं ने स्कूली किताबों के अलावा भी बाबा साहेब को पढ़ा हुआ होता तो उनका मनुष्य को जाति के रूप में देखने का मिथ्या दर्शन नहीं होता। उनके पास मनुष्य को मनुष्य के रूप में देखने का सम्यक दर्शन यानी सही और समुचित दर्शन होता। बिना सम्यक अथवा सही दर्शन के समाज की मान्यताएं कैसे सही हो सकती हैं। समाज की मान्यता को सही किये बगैर समाज की व्यवस्था कैसे सही हो सकती है, यदि समाज का नेतृत्व करने वाले लोग बाबा साहेब के दिए सही दर्शन को समझकर समाज को सही दर्शन देना शुरू करते हैं तो समाज की मान्यता और व्यवस्था दोनों सुधर सकती हैं। जब तक समाज का सही यानी सम्यक दर्शन नहीं होता, तब तक शिक्षा प्राप्त करने जैसा प्रगतिशील कदम, मिथ्या दर्शन की बेड़ियों में बांधा जाता रहेगा। कहानी अपने-आप में सार्थक है।

10

सलीमा की कहानी एक नजरिया देती है। नूपुर अपना करियर बनाते समय कई तरह के घुमाव, अपनी जिंदगी में लेती है। राजनैतिक कार्यकर्ता बनने से यूट्यूबर बनने तक, वह उन चीजों को करने में रुचि रखती है, जिससे उसका कैरियर मजबूत हो सके। अपने चैनल पर हिंदू-मुसलमान करने वाली नूपुर कट्टर धार्मिक पहचान के तहत अपने आप को आम जीवन में स्थापित करने में लगी है। दूसरी तरफ वह हॉकी के खिलाड़ी शिवान देवा के साथ लिव-इन- रिलेशनशिप में भी रहती है। वह शिवान से शादी करना चाहती है। शिवान अपना केरियर पहले बनाना चाहता है, इसके बाद ही शादी करना चाहता है। वह शिवान से गर्भवती भी हो जाती है, आर्ब्शन कराती है, लेकिन आगे जब वह शिवान के बच्चे की माँ

बनना चाहती है, तो माँ नहीं बन पाती है। वह इमोशनल क्लिप बनाकर सोशल मीडिया पर जारी करती है, ताकि आमजन की सहानुभूति बटोर सके और शिवान पर वह दबाव बना सके, जिससे वह उसे छोड़े नहीं। कहानी की अच्छी बात यह है कि शिवान उसके प्रति ईमानदार है। बेशक वह शादी नहीं कर रहा है लेकिन वह नूपुर से सच्चा प्यार करता है। बच्चे के लिए दोनों सेरोगेसी को चुनते है। पार्लर में नूपुर की मुलाकात सीमा से होती है, सीमा सेरोगेसी के लिए तैयार हो जाती है। बच्चे के जन्म के समय नूपुर को पता चलता है, जिस सीमा से शिवान को बच्चा पैदा होने वाला होता है, वह मुसलमान है। जो सीमा अब तक शिवान का बच्चा पैदा करने वाली केवल एक महिला थी, क्षणभर में वह महिला नहीं रहती, वह मुसलमान हो जाती है। वास्तव में बदला कुछ भी नहीं, बदली है केवल दृष्टि अर्थात दर्शन। नूपुर की मिथ्या दृष्टि या दर्शन से देखने के साथ ही सामाजिक व निजी जीवन में क्लेश उत्पन्न हो जाता है, लेकिन यह दृष्टि या दर्शन उस बच्चे के साथ कैसे अपनाया जा सकता है, जो अभी पैदा हुआ है। जो कोरा हार्डवेयर है, जिसमें प्राकृतिक रूप से केवल विंडो के रूप में एक प्राकृतिक मन साथ लेकर आया है, हिंदू या मुसलमान के रूप में जिसकी अभी कोई प्रोग्रामिंग नहीं हुई है। बच्चा हिंदू या मुसलमान तो तब होगा जब हिंदू या मुसलमान का सॉफ्टवेयर उसमें संस्थापित किया जाएगा। खैर नूपुर अपने अंदर संस्थापित मान्यताओं की उपेक्षा करके बच्चे को स्वीकार कर लेती है। कहानी को यदि ठीक से समझा गया तो कहानी भारतीय समाज में शांत व सुखी सामाजिक जीवन को उत्पन्न करती है।

11

डॉ. कनक लता की कहानी 'मेरी सहानुभूति तेरी सहानुभूति' उस दार्शनिक बोध को सामने रखती है, जिसमें मनुष्य को जाति की अवधारणा में देखा और समझा जाता है। जाति न यथार्थ है और न ही सच्चाई। जाति की दृष्टि मिथ्या है और झूठ पर आधारित है। यह झूठ उन लोगों का फैलाया हुआ है, जो इंसान पर हुकूमत करना चाहते है, इंसान को गुलाम बनाकर रखना चाहते हैं। इस स्थिति में एक व्यक्ति जो असभ्य और शोषक है, बहुत जनों को अपने अधीन रखकर उनको दास तुल्य जीवन जीने के लिए मजबूर करता है। विदेशी शासकों के मुकाबले स्वदेशी, वर्णवादी, सामंतवादी प्रवृत्ति का भारतीय व्यक्ति या व्यक्तियों का समूह (वर्ग) ज्यादा क्रूर, अत्याचारी और जन-धन की लूट मचाने वाला साबित होता है, कहानी में शिक्षक है, जो मुखिया के दिये गये भोज के निमंत्रण पर अपने स्कूल के विद्यार्थियों को भोज में ले जाता है। अध्यापक की दृष्टि और दर्शन में जिन स्कूल के विद्यार्थियों को वह भोज में लेकर जाता है, वे सभी विद्यार्थी हैं। भोज में मुखिया का परिवार स्कूल से भोज में आये विद्यार्थियों को विद्यार्थी की दृष्टि और दर्शन में नहीं देखते हैं, वे उन्हें मिथ्या दृष्टि से देखते हैं, इसलिए वे विद्यार्थियों के रूप में बच्चों को विद्यार्थी के रूप में न देाकर जाति के रूप में देखते हैं, जो व्यवहारिक रूप से गलत धारणा है, क्योंकि धारणा या मान्यता के गलत हो जाने से व्यवहार भी गलत हो जाता है, इसलिए मुखिया का परिवार विद्यार्थियों के साथ गलत व्यवहार करने लगता है। समूह के रूप में आये विद्यार्थियों को एक साथ समूह में न बैठाकर उनके समूह को खंडित कर देना चाहता है और अलग-अलग बैठाना चाहता है। अध्यापक विद्यार्थियों को अलग-अलग कर बैठाकर जिमाने की जातिगत मिथ्या दृष्टि और व्यवस्था का विरोध करता है, और विरोध स्वरूप इस भोज का बहिष्कार करते हुए वहाँ से वापस जाने लगता है। इन हालातों में मुखिया को अपनी लोक-निंदा का डर सताने लगता है, इसलिए वह अध्यापक की शर्त मानने के लिए तैयार हो जाता है। कहानी में उभरता दर्शन समझने लायक होता है, जब अध्यापक उस मुखिया के साथ बैठकर भोजन करने से इंकार कर देता है, उसी मुखिया के साथ जो कुछ समय पहले विद्यार्थियों में भेदभाव पैदाकर उन्हें अलग-अलग बैठाकर भोजन कराना चाहता था। कारण पूछे जाने पर अध्यापक कहता है कि विद्यार्थियों में भेदभाव करने वाला व्यक्ति सभ्य नहीं हो सकता है। एक असभ्य व्यक्ति के साथ बैठकर एक सभ्य व्यक्ति कैसे भोजन कर सकता है। इस तरह कहानी यह संदेश देने में कामयाब होती है कि गलत दृष्टि या दर्शन की वजह से गलत व्यवहार होता है। अगर दृष्टि सही व सम्यक हो जाए तो व्यवहार भी सही और सम्यक हो जाएगा। जाति गलत और मिथ्या दृष्टि है, इसलिए जातिगत व्यवहार को सही और सम्यक नहीं कहा जा सकता है। अगर हम इस भांति समझते नहीं हैं, तो हमें समझना चाहिए कि जातिगत व्यवहार असभ्य है, हम स्वयं को कुछ भी समझे, पर दुनिया की नजरों में असभ्य साबित होते हैं।

12

सोमा विश्वास की कहानी का नाम 'तह-रुश' है जबकि मूल शब्द 'तहर्रुश' है। इस शब्द का इस्तेमाल उस स्थिति के लिए होता है, जब भीड़ द्वारा महिला के साथ दुर्व्यवहार किया जाता है, ऐसी कोई इस्लामिक परंपरा नहीं है, लेकिन अरब में यह एक सामाजिक बुराई है।

कहानी में लेखिका कहना चाहती है कि केवल एक या कुछ देशों का नाम लेकर ही क्यों कहा जाए। किसी न किसी रूप में यह खेल प्रत्येक देश में खेला जा रहा है, हालांकि प्रत्येक ऐसे पुरुष हैं जो महिला के खिलाफ इस तरह के घिनौंने व्यवहार का विरोध करते हैं, लेकिन उनके विरोध करने से होता क्या है, खेल तो जारी रहता है। इस खेल में कोई सार्थक प्रतिकार की ताकत नहीं है। डॉक्टर मैम फूलन देवी को यहाँ उद्धृत करती हैं, जो इस खेल में विरोध की ताकत बनी, लेकिन हर जगह तो ऐसा नहीं होतौ। कहानी महिलाओं के साथ होने वाले क्रूर सामाजिक यौनाचार को पाठकों के सामने रखती है और पाठकों की संवेदना को झकझौर कर उनके महिलाओं के प्रति मिथ्या दर्शन को सही दर्शन में बदलने का प्रयास करती है। कहानी विषय की जरूरत के अनुसार छोटी और समेटी हुई है।

13

डॉ. वंदना की 'हौसला' कहानी की दो घटनाएं महत्वपूर्ण है, एक जब माँ की बाजार में बैठने की जगह को कोई दूसरा घेर कर बैठ जाता है, वह अपना सामान दूसरी जगह बैठकर बेचने लगती है। दूसरी घटना है, कॉलेज में जब डॉ. स्वर्णलता शर्मा कहती है कि उसके परिवार का अच्छा खासा बिजनैस है। वह नौकरी केवल टाइमपास के लिए करती है। दोनों घटना बताती है कि ताकतवर लोग, भले ही थोड़े से ही ताकतवर हो, दूसरे लोगों की उन्नति के रास्तों पर कब्जा करके बैठे हैं। कीर्ति जो हौसला कहानी का केंद्रीय पात्र है, घर में सबसे ज्यादा पढ़ी-लिखी है, जीवन में आगे बढ़ने का हौसला माँ और भाई से लेती है, जो आमतौर पर शिक्षित नहीं है, ऐसे लोगों को समाज में समझदार नहीं माना जाता है। अब पहली घटना को लीजिए, माँ का ढ़िया किसी दूसरे ने घेर ली, माँ दूसरी जगह बैठकर सामान बेचने लगती है, लड़ती नहीं, झगड़ती नहीं, क्योंकि माँ को लगता है कि लड़ने का कोई फायदा नहीं, अभी आगे बढ़ना, दो पैसे कमाना, यही उसका ध्येय है, इसे वैसे ही नहीं छोड़ना चाहती है, जैसे चींटी अपने मार्ग पर आई रुकावट से टकराती नहीं, बल्कि थोड़ा-बहुत इधर-उधर होकर अपनी मंजिल की ओर सीधा बढ़ती रहती है। अपने जीवन संघर्ष में कीर्ति उस बात को भी याद रखती है जो बार-बार साइकिल खराब हो जाने पर उसके भाई ने कही थी कि साइकिल के खराब होने से चलना थोड़े ही छोड़ देंगे। ये दोनों बातें उस जीवन दर्शन का हिस्सा है जिसमें समस्या को झेला नहीं जाता बल्कि देखा जाता है, समझा जाता है, और अभाव में रोया नहीं जाता बल्कि समस्या को देखने में ही समा- धान भी देख लिया जाता है। तब मन में अव- धारित होता है कि ऐसा नहीं तो वैसा सही या ये नहीं, तो वही सही, लेकिन रुकते नहीं, ठहरते नहीं, बल्कि निश्चय लिया जाता है कि करते हैं या चलते हैं—देखा जाएगा जो होगा। बस जीवन को देखने की इसी दृष्टि या दर्शन के कारण कोशिशें परास्त नहीं होती, हौसला बना रहता है। कीर्ति का जीवन दर्शन केवल उसके द्वारा खाई चोट से प्राप्त अनुभवों से ही निर्मित नहीं होता है बल्कि उसकी माँ और भाई के अनुभवों से भी निर्मित होता है। इसी तरह जब एक पीढ़ी अपनी अगली पीढ़ी को अपना जीवन दर्शन देकर जाती है, तब आगे की पीढ़ियाँ मजबूत होती जाती है, उनका हौसला बना रहता है। वे कौम दुनिया की दौड में पिछड़ गई हैं, जो पुर्खों के जीवन दर्शन को विस्मत कर बैठी हैं।

14

'ईर्ष्याग्नि' कहानी अपर्णा और शंकर की कहानी भर नहीं है बल्कि स्त्री और पुरुष के संबंधों के विमर्श की ही कहानी नहीं है, मानवीय मनोविज्ञान की भी कहानी है और दार्शनिक मूल्यों की भी, जिसमें से गुजरकर स्त्री व पुरुष, तन से ही नहीं मन से भी अलग हो जाते हैं। यहां दो तरह के दार्शनिक मूल्य हैं, शंकर का दार्शनिक बोध जो अपर्णा को केवल देह के रूप में देखता है, और पुरुष से निम्न स्तर पर रखता है, जबकि अपर्णा के लिए अपर्णा का दार्शनिक बोध उस व्यक्तित्व में स्थिर है, जो उसने अपनी कोशिशों से बनाया है। यह ऐसा व्यक्तित्व है, जो पुरुष से, न उच्चतर होने की चाह रखता है और न निम्नतर। यहाँ बराबरी का भी मूल्य नहीं है बल्कि यहाँ है प्रतिस्पर्धा मुक्त संबंधों की मान्यता, जिसमें एक ऐसा भाव स्थित है, जिसमें वह जो है—वह है; और मैं जो हूँ—वह 'मैं' हूँ। एक का अहं दूसरे के अस्तित्व को गौण न करे; इसे प्रेम स्वीकारता है, तभी प्रेम है; नहीं तो केवल प्रेम का वैसा आवरण है जैसे भेड़ की खाल में भेड़िया होता है। जरा-सी हवा भी आवरण को हटा दें तो भेड़िये को देखा जा सकता है। अपर्णा शंकर पर पड़े आवरण को देख लेती है, यही इस कहानी की सार्थकता है।

15

'पहचान' कहानी अस्तित्व के संकट पर बात करती है, जब किसी व्यक्ति का इंसान होना नकारा जाता है, तब जाति के नाम पर इंसान की कोशिशों को मानसिक पराजय में धकेला जाता

हो, तब किरण जैसा व्यक्ति जाति की दलदल से निकल कर जाति की कीचड से मुक्त होना चाह रहा हो, तब कोई उस पर जाति की कीचड फेंक कर मार रहा हो, तब 'पहचान' का सवाल बन जाता है। अंजली कॉजल इस कहानी में बताने में सफल हुई हैं कि पहचान का मामला जाति से तय नहीं होगा, उसे तय होना है, विशुद्ध अपनी कोशिश के परिणाम के रूप में। गीता जो कहानी का एक पात्र है, कहानी की शुरुआत में वह फटेहाल और कम्पार्टमेंट के साथ पहचानी जा रही है, वह अध्यापिका किरण के प्रोत्साहन और मार्ग दर्शन से गीता की पहचान मौलिक सोच और समझ, उम्दा कविता की कवयित्री के रूप में स्थापित करती है। असल पहचान कोशिशों से प्राप्त सफलता से बनती है।

16

कहानी धर्म और कर्म की है। जीवन में दोनों का अपना स्थान है, इसलिए धर्म को केवल-भर पूजा बना देने से काम नहीं चलेगा, धर्म को नैतिक शिक्षा के रूप में अच्छे गुणों को पोषण करने वाला भी बनना चाहिए। जीवन में तरक्की के लिए कर्म चाहिए, लेकिन उससे पहले कर्म की गुणवत्ता प्राप्त करने के लिए शिक्षा का होना जरूरी है। दोनों में संतुलन होना जरूरी है। जीवन प्रति-पल की घटना है, सुखद और दुखद घटनाएं जीवन में होती ही हैं, रमा इस रूप में धार्मिक प्रवृत्ति की है कि वह पूजा में अपना ज्यादा वक्त गुजारती है। घर में ही नहीं मंदिर में की जाने वाली पूजा को ज्यादा महत्व व समय देती है। रमा का जीवनसाथी का नाम जीवन है, वह कर्म को महत्व देता है। जीवन कठिन परिश्रम करके भौतिक उपलब्धियों को प्राप्त करता है। जीवन की असमय मृत्यु हो जाती है। जिससे आमदनी का स्रोत खत्म हो जाने से रमा का जीवन बिखर जाता है। कहानी रमा का पूजा को धर्म मानना और यह समझना कि पूजा से ही उसके जीवन की दिक्कतें दूर होगी, गलत साबित होता है। धर्म का नैतिक शिक्षा का हिस्सा रमा के लिए जरूरी नहीं था, इसलिए बड़े होने पर रमा के बच्चे उसके किसी काम के सिद्ध नहीं होते हैं। अगर रमा धर्म की नैतिकता को महत्व व समय देती और साथ ही कर्म की गुणवत्ता बढ़ाने के लिए बच्चों की शिक्षा पर ध्यान देती तो रमा और उनके बच्चों का जीवन खुशहाल हो सकता था। जीवन में धर्म और कर्म के मिथ्या दर्शन की वजह से रमा के साथ उनके बच्चों का जीवन भी तबाह हो गया।

17

यह कहा जाता है कि 'जाति जाती–नहीं जाती' लेकिन जाति क्यों नहीं जाती? इस सवाल का जवाब सामाजिक व्यवस्था में देखा जाता है, जबकि जाति एक दार्शनिक समस्या है। जातिगत समाज वास्तव में समस्या नहीं, जाति के प्रति जो दृष्टि या नजरिया लागू किया जाता है, वहां से अधिकार और कर्त्तव्य को वर्गीकृत करके मानवीय प्रयासों पर पाबंदियाँ लगा दी जाती है। कुछ लोगों के नजरिये के कारण मान्यताओं का जन्म होता है, मान्यताएं ही कठोर व्यवस्थाओं की दीवारे खड़ी करती हैं। ब्राह्मणवादी नजर के समक्ष क्योंकि कोई वैकल्पिक नजरिया नहीं है, इसलिए ब्राह्मणवादी नजरिया, उससे उत्पन्न मान्यता, दो मनुष्य के बीच उठती अप्राकृत दीवारे बना देती है। रमन और नियति जैसे कहानी के पात्रों के बीच अगर नजरिया बदल जाता तो संबंधों को कुछ जगह मिल जाती। जब तक ब्राह्मण दर्शन का विकल्प सामने नहीं होगा, तब तक, न तो कहानी में और न जीवन में बदलाव हो पाएगा। इसी को मोहिनी 'मिंकी' अपनी कथा में कथित करती हैं।

18

एक दिन का खेल जो डॉ. तपस्या चौहान की आँखों में उतरता है। जहाँ जीवन है, जश्न है और जीवन का संघर्ष है। जो चाह है, उसे पेड़ पर हाथ बढ़ाकर फल तोडने के मानिंद नहीं हासिल किया जा रहा है, बल्कि हासिल करने के लिए संघर्ष में सभी चीज गौण हैं, नाला, कीचड, गंद में सन जाना, फिर जो हासिल किया वह सामूहिक रूप से हासिल किया, उसका लाभ व्यवस्थित तरीके से सभी को देना भी, जीवन का उन्नत मूल्य है। इस सुअर की दावत में व्योवृद्ध द्वारा की जाने वाली समाज की चिंता, युवकों का जश्न, गीत और संगीत के साथ नृत्य है। सभ्य जीवन की ऐसी कला निम्न कैसे हो सकती है। डॉ. तपस्या चौहान की कहानी पूछती-सी जान पड़ती है कि क्या है ऐसा सभ्य दुनियां में जो यहाँ नहीं है, केवल भव्यता को छोड़कर पूछे जाने वाला प्रश्न तो बनता है। सवाल उस सुअर का भी जो सभ्यता और जीवन के रंगों को जिंदा रखने के लिए कुर्बान नहीं हुआ था, बल्कि कुर्बान किया गया था, सवर्णवाद की दमक में दलता दलित की भांति।

19

डॉ. धनेश्वरी की कहानी 'वे गुरु हैं हमारे' शिक्षा व्यवस्था के महत्वपूर्ण हिस्सा यानी गुरुजी पर बात करती है। गुरु और शिष्य या शिष्या के बीच ज्ञान के अतिरिक्त कुछ शेष नहीं होता है। जहाँ जहाँ गुरु के लिए शिष्या केवल भर शिष्या नहीं है, बल्कि शिष्या की

मान्यता से बहुत अलग कुछ और ही है। कहा ही जाएगा, एक जाति है। जाति भी मान्यता है और शिष्या भी मान्यता है, अब देखना यह है कि गुरु दोनों में से किस मान्यता को मान्यता देता है। जब गुरु किसी व्यक्ति को 'शिष्या' से अलादा 'जाति' के रूप में देखता है, तब उसकी इस दृष्टि या दर्शन से सामाजिक क्लेश की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। डॉ. धनेश्वरी इस स्थिति को बड़ी कुशलता से तल से ताल पर लेकर आती हैं।

20

आँखों से ही नहीं देखा जाता है बल्कि देखने के लिए आपके पास दिलो-दिमाग की आँखें भी होनी चाहिए। कभी-कभी कोई विचार सर्दी में जैसे रजाई खींचकर भोर के दर्शन कराने की मानिंद जगा देता है, वैसे ही यशोदा की कहानी 'नाम के आगे सन्नाटा' का पात्र बाबा साहब डॉ.आंबेडर के शब्दों को पढ़कर जाग जाता है। जाग जाने में कहाँ सुविधा हैं, बल्कि जाग जाने के बाद ही हर मुश्किल हमसे टकराने के लिए तैयार मिलती है। सोया हुआ जमीर यातना रहकर भी कुछ नहीं कर सकता। पर जागा हुआ जमीर उनींदा नहीं रह सकता। यशोदा अपनी कहानी में नहीं कहती कि वह दलित है, उसे बराबरी का अधिकार चाहिए, बल्कि वह अपनी आवाज बुलंद करते हुए कहती है कि वह भी इंसान है, इसलिए उसे बराबरी का अधिकार चाहिए। दलित की अस्मिता में पहचानने का आग्रह के कारण ही इंसान होने की अस्मिता पृष्ठभूमि पर चली जाती है। दलित होना एक अवस्था हो सकता है, पर पहचान नहीं हो सकता। घायल होना, जख्मी होना किसी के लिए भी अवस्था हो सकती है, लेकिन पहचान नहीं हो सकती। जख्मों को याद रखा जा सकता, उसका ख्याल रखा जा सकता है कि उन्हें भरना है, पर जख्म ही इंसान की पहचान बन जाए यह किसी तरह ठीक नहीं माना जा सकता है। इंसान होना काफी है, कोई इससे ज्यादा या कम कैसे हो सकता है, यदि कोई जिस बिंदु से इंसान से ज्यादा या कम हो जाता है, उसी बिंदु से उस चीज या बात का होना तय है, जिसे नहीं होना चाहिए। एक समान अधिकारों की आवाज बिना एक पहचान या एक अस्मिता के कैसे हो सकती है। जब तक की जाति रहेगी, तब तक तो शोषण किसी न किसी रूप में मौजूद रहेगा। डॉ. यशोदा कुमारी समरूप पहचान के साथ समान अधि-कारों की माँग करती है, इसे कथाकार की बौद्धिक उपलब्धि मानना जरूरी है।

21

'महकता कोना' कहानी उस सामाजिक परिवेश को सामने रखती है, जिसमें आजादी के बाद संवैधानिक व्यवस्था लागू होने के साथ सभी को पढ़ने और आगे बढ़ने का अवसर मिला था, इसी परिवेश में एससी, एसटी और ओबीसी के साथ सवर्ण वर्ग के युवा आपस में मिलने लगे, परस्पर संवाद और बहसें करने लगे। इस प्रक्रिया में वे एक-दूसरे को जानने और समझने लगे। इससे उनके बीच नए सामाजिक समीकरण बनने लगे, हालांकि समाज के कमजोर तबके में दहेज प्रथा जैसी बुराई पहले नहीं थी, लेकिन परस्पर संपर्क से उन्नति व अवसर का उपयोग करने की चाह व अक्ल आने के साथ कई एक सामाजिक बुराईयाँ भी आ गई।

खैर! हम अपना ध्यान 'महकता कोना' कहानी पर टिकाते हैं, यह कहानी अवनी की है, उसमें उसके साथ महत्वपूर्ण पात्र श्रेय श्रीवास्तव है, जिसके पिता आजादी के बाद की संतान हैं, इसलिए वह अपने बेटे श्रेय की खुशियों के रास्ते में नहीं आते, जैसे श्रेय के पिता के पिता और दादा श्रेय के पिता की खुशियों के सामने आ गये थे। इस तरह से वर्णवादी कठोर चट्टान के चटकने के संकेत कहानी में साफ तौर पर उभरते हैं। श्रेय के पास ऐसी कोई दृष्टि या दर्शन नहीं कि वह अवनी को एक जाति में रूप में देखे, इसलिए उनके बीच बहुत सहज और मानवीय संबंध बनते हैं। श्रेय के पिता बहुत पहले ही वर्ण-जाति की दृष्टि व दर्शन को छोड़ चुके हैं। इस तरह से यह कहानी अखंड भारतीय समाज की आधारशीला रखती-सी जान पड़ती है।

22

डॉ. प्रियंका सोनकर की कहानी 'मोक्ष' पर बात करने से पहले मोक्ष का मतलब जान लेना जरूरी है। मोक्ष का मतलब माया से मुक्ति है। हर तरह के लोभ, लालच से मुक्ति है, लेकिन मोक्ष की क्रिया (कर्म) जिनके हाथों से होगी, वह खुद लोभी-लालची है। डॉ. प्रियंका सोनकर अपनी कहानी में इस विरोधाभास को देखती हैं, लेकिन चुप नहीं रहती बल्कि सवाल उठाती है कि एक लोभी व लालची पुरोहित कैसे मोक्ष के द्वार हमारे पुर्खों के लिए खोल सकता है।

हमने इन 22 कहनियों से गुजरकर महसूस किया कि मन में संस्थापित मान्यताओं के सामाजिक व्यवहार से प्राकृतिक और सहज मानवीय संबंध निर्मित नहीं हो पा रहे हैं। जिन मान्यताओं से पारिवारिक व सामाजिक नैतिकता का निर्माण हुआ है, उनके बीच जैसी पद, पद-प्रतिष्ठा और अधिकार व कर्त्तव्य की दार्शनिक व्यवस्था की गई

है, उनकी वजह से निजी व सामाजिक जीवन में क्लेश की स्थिति उत्पन्न हो गई है। प्रत्येक कहानी स्थापित पारिवारिक व सामाजिक मान्यताओं से संघर्ष करती है। स्थापित मान्यताओं की वजह से उत्पन्न क्लेश से अपना बचाव या रक्षा करने की मुद्रा अपनाती है। कई कहानियों में असहमति का तीव्र व तीखापन देखा गया। वहाँ-जहाँ स्त्री-पुरुषों के संबंधों की सहजता बुरी तरह से प्रभावित होती है, ठोस अस्वीकृति का भाव शासन करता है, लेकिन मुझे लगता है कि दर्शन के अभाव में शासन का इस प्रकार का भाव समाज पर कोई स्थाई प्रभाव दर्ज नहीं कर पायेगा, क्योंकि नजरिया जो प्रमुख समस्या है, को प्रतिस्थापित करने के लिए विकल्प के रूप में कोई दूसरा नजरिया कहानियाँ नहीं दे पाती हैं, यहाँ सोचना जरूरी है।

प्रत्येक रचनाकार को समझना जरूरी है कि दर्शन–देखने के तरीके को अभि-नियमित करता है। पहला तरीका है कि चीजों को समुचित रूप देखा जाए। जैसे सामने जो हमें दिखाई दे रहा है, वह मनुष्य है, वह मनुष्य ही क्यों है, क्योंकि उसका आकार ऐसा है, आकार ऐसा क्यों है, क्योंकि उनके मांस, चमडी, हड्डी व रक्त आदि ऐसे हैं, ये सब ऐसे क्यों है, क्योंकि जिन चार तत्त्वों से बने हैं, वे ऐसे ही हैं, चार तत्त्व क्या है, ये असंख्य पदार्थों का वर्गीकरण है, वास्तव में जिन्हें चार तत्त्व कहा जा रहा है, वे असंख्य पदार्थ हैं। यही असंख्य पदार्थों का समूह और उनका ऐसा आकार ही मनुष्य है। इस भांति मनुष्य के दर्शन किये जाते हैं। दर्शन के इस तरीके में मनुष्य को प्राकृतिक भाव में संस्थापित किया जाता है।

दूसरी तरफ का दर्शन कहता है, सामने जो चीज है, वह हिंदू, मुसलमान या ईसाई आदि है, अथवा चमार, दूसाध खटिक, ब्राह्मण, ठाकूर आदि है। यहाँ मनुष्य के अप्राकृतिक रूप से दर्शन किये जा रहे हैं। यहाँ देखने का तरीका समुचित है अथवा अनुचित है, समझने और समझाने का तरीका देना कथाकार का काम है, मनुष्य के अनुचित दर्शन की वजह से जो निजी व सामाजिक जीवन में संत्रास उत्पन्न हुआ है, उसी के विरुद्ध इस कथा विशेषांक की लेखिकाओं का संघर्ष दिखाई देता है। इस संघर्ष के भी दर्शन किया जाना जरूरी है।

स्त्री किसी पुरुष से कितनी सम है और कितनी विषम है, उसी आधार पर उसका पद, प्रतिष्ठा और अधिकार व कर्त्तव्यों का निर्धारण विशिष्ठ तरीके से होगा। स्त्री से पुरुष की विषमता कम मात्रा में है पर समता अधिक है, इस आधार पर पारिवारिक व सामाजिक नैतिकता के निर्धारण से पद, पद-प्रतिष्ठा और अधिकार व कर्त्तव्य का निर्धारण सम व विषम की आनुपातिक मात्रा के अनुरूप होना न्यायसंगत होगा। वर्तमान सामाजिक व्यवस्था में न्याय हो नहीं रहा है, इस संग्रह की कहानियाँ इसकी गवाही दे रही है। पारिवारिक व सामाजिक संबंधों के बीच स्थापित दार्शनिक-बोध को इन कहानियों ने खुलकर चुनौती दी है, सभी कथाकाराएं बधाई की पात्र हैं। फिर भी, चिंता की बात है कि जिस प्राकृतिक व न्यायपूर्ण दार्शनिक बोध को विकल्प के तौर पर उपस्थित होना चाहिए, वह कहानियों में नजर नहीं पड़ता। कहानियाँ जिस मजबूत, व्यवस्थित व नियंत्रित दार्शनिक बोध की मान्यताओं से असहमत हैं, उसका मजबूत और व्यवस्थित दार्शनिक बोध, विकल्प स्वरूप उन्हें देना होगा। कहानियों में वैकल्पिक दार्शनिक बोध का होना उतना ही जरूरी है, जितना कि कहानी का होना जरूरी है, जिसके अभाव में कहानियों के औचित्य पर सवाल उठेंगे, ऐसे सभी सवाल कहानियों में स्थापित फूले-फोके मूल्यों को बुलबुलों की भांति फोड सकते हैं।

कई साहित्य सेवियों का विचार होता है कि उन्हें जो लिखना था, वह उन्होंने लिख दिया है। आगे उसका काम नहीं है। कहानी लिखना भी वैसा ही काम है जैसे किसान को बीज बोकर यह देखना है कि वह अंकुरित हुआ है या नहीं, और अगर अंकुरित हो गया है तो पला-बढ़ा या नहीं। पला-बढ़ा हुआ तो फल दिये या नहीं। लापरवाही उस मेहनत को बर्बाद कर रही है, जो बीज जैसी चीज को उत्पन्न करने के लिए की गई। वंचित समाज के महान साहित्यकारों की कहानी में जिन पात्रों की छलक हमें देखने के लिए मिलती है, वैसी कोई झलक साहित्यकार के खुद के जीवन में नहीं होती, कारण संभव है कि वह दर्शन को छूने और समझने से लगातार स्वयं को वंचित करते रहे थे, रहे हैं। उसमें इसका अहसास है या नहीं, यह जानना भी कोई मुश्किल काम नहीं। खैर! हमें उम्मीद है, जहाँ तक हम पहुँचे हैं, वहाँ से आगे हम बढ़ेंगे। इसी उम्मीद के साथ डा. पूरन सिंह के संपादन में तैयार यह विशेषांक आपको सादर भेंट करते हैं।❑